कीर्त्तिलता का पुनर्पाठ

भारतीय वाङ्ग्मय में राजप्रशस्ति काव्यों की अविछिन्न परंपरा रही है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में पाणिनी के 'पातालविजय' और 'जम्बावतीविजय' से लेकर वामन,उद ट,धनंजय के 'दसरूपक' से होते हुए तेरहवी शताब्दी में विद्याधर, सत्रहवी शताब्दी में पंडित जगन्नाथ ङुत 'रसगंगाधर' तक अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में रचित काव्योंकी समृद्ध परंपरा मौजूद है। भारतवर्ष में राजप्रशस्ति काव्य की परंपरा और उसकी निर्मिति के कारकों की पड़ताल शोध का दिलचस्प विषय रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी ने आदिकालीन साहित्य की सामग्रियों के परिरक्षण में जिन तीन सूत्रों का उल्लेख किया उनमे 'राजाश्रय'को सबसे प्रबल और प्रमुख कारक माना था।

पूर्वी भारत में दक्षिण और पश्चिम भारत की तुलना में राज्याश्रित काव्यों की परंपरा का सूत्रपात पहले हुआ। चौदहवी शताब्दी में तिरहुत राज्य (वर्तमान बिहार का उतरीभाग) में बिसइबार–वंश में जन्मे 'मैथिल कोकिल' महाकवि विद्यापति ठाकुर रचित 'कीर्त्तिलता' ऐतिहासिक चरित–काव्यों की परिपाटी में मील का पत्थर है। 'कीर्त्तिलता' महाकवि विद्यापति की सबसे पहली रचना है,जिसमे राजा कीर्त्तिसिंह की वीरता और प्रशस्ति की गाथा है। विद्यापति ठाकुर का आर्विावहिन्दी साहित्य के जिस पटल पर हुआ वह दौर भाषा,साहित्य और इतिहास की दृष्टि से 'संधिकाल' का काल रहा है। भाषायी विविधता और साहित्यिक वैविध्य के लिहाज से आदिकाल हिन्दी साहित्य का सबसे विवादास्पद किन्तु विचारो के मंथन का काल रहा है।

संस्कृत के विद्वान विद्यापति ने कीर्त्तिलता की रचना देसी भाषा 'अवहट्ट' में की है। कीर्त्तिलता आदिकालीन हिन्दी साहित्येतिहास की कालजयी रचना है जिसमे दो संस्कृतियो के संक्रमण से निकली अनुगूँज भी है और शिष्ट भाषा संस्ङुत से देसी भाषा के बदलने की आहट भी।दरबारी ऐतिहासिक चरित–काव्य परंपरा की परिपाटी का अनुगमन करते हुए भी विद्यापति अपने समय और समाज से मुह मोड़कर नही चले। कीर्तिलता कालजीवी रचना होने के कारण ही कालजयी रचना है। यह रचना मध्यकालीन भारतीय संस्कृति और जीवन का सर्वोत्मष्ट सार–संग्रह है। चार पल्लवों में रचित कीर्तिलता में अपने प्रिय राजा कीर्त्तिसिंह की वीरता के गुणगान के साथ ही तदयुगीन भारतीय समाज में तुर्की संस्कृति के आगमन से उपजे नए बाज़ार,स्थापत्य–कला, इस्लाम की असहिष्णुता, हिन्दूओ और स्त्रियो की दयनीय स्थिति,सैन्य संचरण, शासन–प्रणाली के साथ–साथ तुर्की–भोज्य संस्कृति की छाप बिखरी पड़ी है।

भाषायी करवट और दो संस्कृतियो के संक्रमण से निर्मित एक नए भारतीय समाज और इतिहास को बया करता यह ग्रंथ मध्यकालीन इतिहास का मूल्यवान धरोहर है।

विवेच्य शब्दः राजप्रशस्ति काव्य, संधिकाल, अवहट्ट, भारतीय और तुर्की संस्कृति का संक्रमण, नया बाज़ार, सैन्य संचरण, तुर्की भोज्य–संस्कृति, भारतीय गौरव गाथा।

(डॉ बिन्दु चौहान ,सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग, झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, ब्राम्बे–835205)

कीर्त्तिलता का पुनर्पाठ

डॉ बिन्दु चौहान

(सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

महान रचनाएँ की बासी या पुरानी नहीं होती। उनमें बीते वक़्त की सबक, वर्तमान की चेतना और विष्य की सांवनाओं की आहट निहित होती हैं, जो इनकी नवीनता और प्रासंगिकता को प्रत्येक युग में बनाए रखती है। हिंदीसाहित्येतिहास के प्रथम कालखंड'आदिकाल' में ऐसी कई रचनाएँ हैं जो इतिहास की धूल और शोध की उपेक्षा की शिकार होने के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास के अध्ययन–क्रम में आज सिर्फ़ नाम बनकर दर्ज़ हैं।

आदिकाल हिंदी साहित्य का सर्वाधिक विवादास्पद काल रहा है। नामकरण की समस्या हो या प्राचीन पांडुलिपियों की अप्राप्यता, शोध–दृष्टि की अकर्मण्यता रही हो या प्राङ्गत, अप्रंश भाषाओं की ज्ञान की कमी। संवत 1050 से संवत 1375 ईस्वी के कालखण्ड के बीच में हिंदी भाषा औरउसकी साहित्यिक प्रवृत्तियों की निर्मिति की दृष्टि से आदिकालीन भाषा, इतिहास और संस्कृति का अध्ययन महत्वपूर्ण और अनिवार्य है। शंकर के अद्वैत, बौद्धों, जैनों और सिद्धों तथा नाथों के धार्मिक मत हो या संस्कृत, पालि, प्राङ्गत और अप्रंश भाषाओं के परस्पर विरोधी एवंराज प्रशस्ति और लोक काव्य के वैविध्यपरक किंतु समानांतर बहने वाली धारा; इनके छींटे समूचे आदिकाल में मौजूद हैं।यह दौर मध्यकालीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, धर्म, कला, भाषा तथा समाज के 'संक्रमण' का काल है।

'कविकूल चूड़ामणि','मैथिल–कोकिल' महाकवि विद्यापति ठाकुर संधिकाल के कवि हैं। सन् 1350 ईस्वी से सन 1450 ईस्वी तक की लंबी आयु प्राप्त महाकवि का जन्म पूर्वी–भारत के तिरहुत (उत्तरी बिहार के मिथिला प्रांत) में शुक्ल–यजुर्वेद की मध्यांदिन शाखा के काश्यप–गोत्रीय मैथिल ब्राहमण परिवार में हुआ। ये 'बिसइबार–वंश' के थे, जो मैथिल ब्राह्मणों का बहुश्रुत संस्ङ्गतज्ञ परिवार था। विद्यापति के जन्म व परिवार संबंधी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ रामनाथ झा लिखते हैं– यह ऐसे विद्वानों राजपुरूषों का परिवार था जो मिथिला में अपने शास्त्रीय ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था और कर्णाट राजाओं के दरबार में विश्वस्त उतरदायित्व पदों पर आसीन थे। महाकवि विद्यापति ठाकुर का रचना काल ओइनवार वंशी राजाभोगीश्वर से लेकर महाराजरवसिंह के राज्यकाल तक चला। अपनी लंबी आयु में महाकवि ने ओइनवार वंशी राजाओं का आश्रय पाया था जिनमें राजा गनेश्वर के पुत्र कीर्त्तिसिंह और शिवसिंह प्रमुख थें।

भारतीय राजप्रशस्ति की सुदीर्घ परंपरा में महाकवि विद्यापति रचित 'कीर्त्तिलता' में राजा कीर्त्तिसिंह के चरित्र की प्रशस्ति गाथा गायी गई है। नेपाल राजदरबार पुस्तकालय और दरंगा महाराज के राजकीय पुस्तकालय में आज भी इस प्रति का संरक्षित होना 'कीर्त्तिलता' की अभिजात्यता और श्रेण्यता का सूचक है। राजप्रशस्ति काव्य–परंपरा के लिए अंग्रेज़ी में 'व्तदंजम ब्वनतज च्वमजतल' शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। 'भपेजवतल वभिप्दकपंद स्पजमतंजनतम' के लेखक सर मौरिस विंटरनित्ज़ राजप्रशस्ति काव्य–परंपरा को परिभाषित करते हुए लिखते हैं की –ठल 'व्तदंजम च्वमजतल' जीम चमवचसम पद जीम मेज तमदकमत जीम Indian term Kavya which जीवन ही वतकपदंतपसल उमंदपदह 'चवमजतल', पद तीमजवतपबे इममद जीम चेमबपंस बवददवजंजपवद चवसपेमक मगचतमेपवद, जीम उंपद चवमजपब चपमबम, पे जींज पज जजंबीमे उवतम पउचवतजंदबम जव जीम वितउ जींद जव जीम नइरमबज बनसजपअंजमक चंतजपबनसंतसल, पदिवज मगबसनेपअमसल पद जीम बवनतजे वप्दिकपंद चतपदबमेंदक बवदेम नमदजसल पे वजिमद जेलसमक ब्वनतज च्वमजतल. २ राजप्रशस्ति काव्य–परंपरा के इतिहास को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं –

उपमा–संचयन, अतिश्योक्ति वर्णन, सामासिक पद–योजना, लाक्षणिकता, शास्त्रोनुमोदित ज्ञान, व्याकरणिक शुद्धता, अलंकार ज्ञान, कामशासत्रीय वर्णन आदि राजप्रशस्ति काव्य के प्रमुख अभिलक्षण रहे हैं। 'कीर्त्तिलता' के साहित्यिक मूल्यांकान से ज्ञात होता है की विद्यापति से पहले भी 'ऐतिहासिक प्रशस्ति–काव्यों' की अक्षुण्ण परंपरा मौजूद थी। डॉ अंबादत्त पंत इस संबंध में लिखते हैं कि–कीर्त्तिलताऔर कीर्त्तिपताका वर्णन शैली में लिखा गया ऐतिहासिक स्तुतिपरक काव्य है। विद्यापति ने कीर्त्तिलता में राजा कीर्त्तिलता और उनके भाई वीरसिंह की युद्ध में वीरता का चित्रण किया है। राजा शिवसिंह की प्रशंसा 'कीर्त्तिपताका' के उत्तरांश पाठ में भी मिलता है।चरित–काव्य लेखन की परंपरा के उदय का कारण 'सामंतवाद' रहा है। भारतवर्ष में ईसा की दूसरी शताब्दी से ही राज–स्तुतिपरक रचनाओं का निर्माण शुरू हो गया था। क्षत्रप रुद्रदमन का गिरनार का शिलालेख (150 ईस्वी), हरिषेण की लिखी वत्सट्टि की मंदसौर की स्तुतिपरक ऐतिहासिक रचनाओं के लिखे जाने की तरफ संकेत करती है। मौरिस विंटरनिट्ज़ लिखते हैं–

वे आगे लिखते हैं– च्ंदमहलतपबेभींअम बवउम कवूद जव ने पद पदेबतपचजपवद, भंतम दवज वदसल भीपेजवतपबंस कवबनउमदजे, इनजंतम वजिमद उवतम वत समे निसस सिमकहमकवतदंजम चवमउे, तपजजमद नेनंससल पद मसंइवतंजम उमजतमेंदक दवूंदक जीमद पद सपजमतंतल चतवेम

मौरिस विंटरनित्ज़ मानते हैं की सबसे प्राचीन ऐतिहासिक काव्य 'गउडवहो' है, जिसके कवि वाक्पतिराज हैं, जो कनौज के राजा वशोवर्मन के प्रधान कवि थे। यह ग्रंथ यशोवर्मन की मृत्यु के बाद लग ग 750 ईस्वी में लिखा गया। यह काव्य ऐतिहासिक कम प्रशस्तिपरक अधिक था। संस्ड्रत का सबसे पहला ऐतिहासिक–काव्य पदमगुप्त परिमल का लिखा 'नवसाहसांकचरित' है। साकवि विलहण ने 'विक्रमान्कदेवचरित' में चालुक्य राजा के चरित्र और वंश–परंपरा की प्रशंसा की है। प्राड्रत और अप्रंश काव्यों में संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों का परिवर्तित रूप दिखाई पड़ता है। प्राड्रत के आगम जैन कथा–साहित्य के 'चूर्णी–साहित्य' में इन काव्यों को नया मोड़ मिला। 'तरंगवइकहा','वसुदेवहिंडी' प्राड्रत कथा–साहित्य की प्रमुख रचनाएँ हैं। द्रेश्वरसूरि के 'कहावलि', यतिवृष के 'तिलोयपन्नति', जिण द्रगणि की रचनाओं में महापुरुषों के चरितों को संकलित किया गया है। 'आदिनाथचरित', 'सुमतिनाथचरित', 'नेमिनाथचरित', 'देवकीचरित', प्रमुख चरित साहित्य रहें। चरित–साहित्य लेखन की परंपरा अप्रंश में और अधिक विकसित रूप में मिलता है। पुष्पदंत ड्रत 'नायकुमार चरिउ', 'जसहर चरिउ', 'जम्बूस्वामी चरिउ', 'बाहुबली चरित', 'सनतकुमार चरित' अप्रंश के प्रमुख काव्य हैं।

बारहवीं शताब्दी के प्रथम पूर्वाध में जल्हण ड्रत 'सोमपालविलास', अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान की प्रशंसा में रचित 'पृथ्वीराजविजय', गुजरात के बघेल राजा लवणप्रसाद और वीरधवल की जीवनी पर सोमेश्वरदेव ने 'कीर्त्तिकौमुदी' की रचना की है। कवि जिनहर्ष ड्रत वस्तुपाल की जीवनी 'वस्तुपालचरित', बालचंद्रसूरिड्रत 'वसंतविलास', कवियत्री गंगादेवी ड्रत 'मधुराविजय', 'वीरकमपराय चरित' की रचना की। जैन कवि नयचन्द्र ने 'हम्मीरकाव्य', रघुनाथ ने 'रासिकारमण' की रचना की। चौदहवीं शताब्दी के कवि विद्यापति ड्रत 'कीर्त्तिलता' और 'कीर्त्तिपताका' इसी ऐतिहासिक काव्य–परंपरा की कड़ी की रचनाएँ हैं। राज्याश्रित काव्य–सर्जन के लिए कवि राज्य के प्रति अपनी ड्रतज्ञता ज्ञापित करता था और राजा के दरबार में ही इन पंडितों व कवियों को अपने काव्य के अनुसार 'इचिछत श्रोता समुदाय' (वचीपेजपबंजमक नकपमदबम) मिलते थे। राजा–महाराजाओं व सामंतों द्वारा सम्यक वातावरण और प्रोत्साहन दिया जाता था, अतः राज्याश्रित काव्यों में सृजन काल और राज परंपरा का निश्चित ही बड़ा महत्व होता था।

'कीर्त्तिलता' आदिकालीन हिंदी साहित्य का बेहद दिलचस्प और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। मध्यकालीन इतिहास और संस्ड्रति को बयां करता यह ग्रंथ देसी भाषा 'अवहट्ठ' में लिखा गया है जिसमें राजा कीर्त्तिसिंह और उनके कोई वीरसिंह की वीरता की कहानी कही गयी है। विद्यापति द्वारा लिखा गया यह पहला ग्रंथ है जिसे इन्होंने बीस वर्ष की अवस्था में लिखा था। इसकी भाषा के संर्द में विद्यापति लिखते है–

सकक्य वाणी बहुअ (न) भावई, पवाउ रस को मम न पावई।
देसिल बयना सब जन मिट्ठा, तै तैसन जम्पओ अवहट्ठा।।

विद्यापति से पूर्व भी 'देसी भाषा' अथवा 'देसी शब्द' प्रचलित था। भारतमुनि के नाट्यशास्त्र में इसका पहला प्रयोग मिलता है। 'तरंगवइकहा' के लेखक पादलिप्त ने अपनी प्राड्रत भाषा को 'देसीवयण' कहा है। उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला में महराष्ट्री प्राड्रत को देसी कहकर उसे प्राड्रत से अलग बताया। कोऊहल ने 'लीलवई' में उसी महराष्ट्री प्राड्रत को 'देसी भाषा' कहा। प्राड्रत–साहित्य में स्वयं ने पउमचरिउ में 'देसिक भाषा' का उल्लेख किया। स्वयं के बाद पुनः चौदहवीं शताब्दी में भाषायी संक्रमण की प्रक्रिया में एक बार फिर भाषा को 'देशी', 'ग्रामगिरा' कहने की प्रवृत्ति ने ज़ोर पकड़ा। विद्यापति के युग तक आते–आते 'अवहट्ठ' अप्रंश भाषा का ही वाची बन गया। देसी भाषा शब्द अप्रंश के लिए अपनाने का विशेष कारण यह था की इस भाषा में प्राड्रत की तरह ही तद्भव शब्दों का बाहुल्य था। अप्रंश के वाची अर्थ में 'अवहट्ठ' की चर्चा डॉ तगारे ने अपनी पुस्तक 'भ्पेजवतपबंस ळतंउउंत में पृष्ठ सोलह पर 'पूर्वी–अप्रंश' वर्गीकरण के अंतर्गत किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका की भाषा को 'पूर्वी–अप्रंश' स्वीकार किया है। डॉ शिवप्रसाद सिंह अवहट्ठ को 'परवर्ती–अप्रंश' मानते हैं। वे लिखते हैं– अवहट्ठ भाषा अप्रंश की ही अग्रसरीभूत प्रतिनिधि है, किन्तु अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के कारण यह अप्रंश की अपेक्षा कहीं ज्यादा घनिष्ठ रूप से हिन्दी और उसकी क्षेत्रीय बोलियों से संबन्धित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने माना की कीर्त्तिलता में अवहट्ठ या अग्रसरी ूत अप्रंश भाषा का नमूना प्रकट होता है और प्राचीन मैथिली –अप्रंश के चिन्ह भी मिलते हैं। कीर्त्तिलता के पाठाध्ययन से ज्ञात होता है की इसमें अप्रंश के अलग–अलग रूप जैसे महाराष्ट्री, अर्धमागधी, शौरसेनी के अलावा अरबी–फारसी के शब्द भी मिलते हैं। अतः कीर्त्तिलता की भाषा अप्रंश और हिन्दी की मिली–जुली 'संधि–भाषा' है।

कीर्त्तिलता केवल राजा कीर्त्तिसिंह की वीरता और वंश–परंपरा की प्रशस्ति का काव्य भर नही है, बल्कि समूचे आदिकालीन साहित्येतिहास में यह एक अद्वितीय साहित्य है जिसमें भारतीय और तुर्की संस्कृति के संक्रमण से निकली अनुगूँज भी है और भाषायी बदलाव की आहट भी। 'कीर्त्तिलता' ऐतिहासिक चरित–काव्य या अवहट्ठ की रचना मात्र नही है बल्कि इसमे भारतीय और तुर्की संस्कृति की टकराहट से निर्मित एक नए समाज, नयी संस्कृति, नयी कला, धर्म आदि के तत्व भी उपस्थित हैं। डॉ सुनीति कुमार चटर्जी ने 'वर्णरत्नाकर' की भूमिका में कीर्त्तिलता के संबंध में लिखा है –जेम अमतल हतमंज अंसनम वापितजपसंजं' बवउचमदकपनउ वभिसपमिंदक बनसजनतम पद डमकपमअंस प्दकपं बंद कीर्त्तिलता की कथा छोटी है। महाराज गनेश्वर के तीन पुत्र थे– जयसिंह, कीर्त्तिसिंह और वीरसिंह थे। राजा गनेश्वर जब तिरहुत के राजसिंघासन पर आसीन थे उनके समय में बंगाल में 'असलान' नाम का मुसलमान मलिक था। क्षेत्र विस्तार के लिए इन दोनों में युद्ध हुआ, जिसमें असलान ने कपट से राजा गनेश्वर को संधि का प्रस्ताव देकर छल से उनका वध कर दिया। पिता की मृत्यु का बदला और राज्य वापसी के उदेश्य से कीर्त्तिसिंह और उनके छोटे भाई वीरसिंह दिल्ली के लिए कूच किया और दिल्ली जाकर सुल्तान से मदद की गुहार की। सुल्तान की मदद से दोनों भाइयों ने युद्ध भूमि में वीरता से युद्ध किया और असलान को हराकर सम्मान पूर्वक अपने राज्य को प्राप्त किया।

कीर्त्तिलता की पूरी कथा चार पल्लवों में है। दूसरे और तीसरे पल्लव में जौनपुर (दिल्ली) के तुर्की बाज़ार, स्थापत्य–कला,नगर–निर्माण, भोज्य–संस्कृति का विषद वर्णन हुआ है। इस समय तुग़लक वंश में मोहम्मद तुग़लक (1351) दिल्ली की गद्दी पर आसीन था। इसका शासन काल 1351 ईस्वी से लेकर 1388 ईस्वी तक रहा था। जोनापुर के स्थापत्यके बारे में विद्यापति लिखते हैं:

पेषखिअ पट्टन चारु मेषल जनीन नीर पषारिया।
पासान कुट्टीम भोति भीतर चूह उप्पर ढारिया।।
वकवार, साकम बोध पोषिर नीक नीक निकेतना।
अतिवहुत भांति विवट्टवट्टहि लेहो वड्डेओ चेतना।
सोपान तोरण यंत्र जोलन जाल जालऔ षणडिया।
धअधवल हरघर सहस पेषखिय कनअकलशहि मंडिया।।

'नगर' या 'शहरीकरण' की प्रक्रिया भारत में तुर्कों के आने से पहले भी हड़प्पा काल और ईसा पूर्वा छठी और सातवीं शताब्दी में प्रधान रूप से हुई थी। सन 1200 ईस्वी के पूर्वा के भारत का तुर्कीकालीन भारत के रूप में संक्रमण एक युगांतकारी घटना थी। 'शहरीकरण','उत्पादन–तंत्र' और 'वाणिज्य विस्तार' तुर्कों के भारत आगमन के तीन महत्वपूर्ण फलक रहे। शहरीकरण का एक प्रमुख घटक है– नगर–निर्माण। तुर्कों के भारत आगमन पर सबसे बड़ी चुनौती नए बासिनदों को भारत में बसाने की थी। तुर्क अपने साथ स्थापत्य की नयी कला लेकर भारत पहुंचे। भारतीय नागर, वेसर और द्रविड़ शैली के विपरीत तुर्की स्थापत्य में कुरान शरीफ के इल्म और फूल–पत्तों, बेल–बूटों और रोशनदानों का प्रयोग होता था। तुर्कों ने पहली बार बेहतरीन गुणवत्ता वाले चुना–पत्थरों का प्रयोग किया। भारतीय कला से तुर्कों ने बेल, स्वास्तिक, कमल को अपनी कलाओं में शामिल किया था। इतिहासकार डॉ सतीशचन्द्र तुर्ककालीन कला पर विचार करते हुए लिखते हैं–

'हमाम' तुर्की कला की दूसरी रोचक कला रही। उद्यानों का वर्णन कीर्त्तिलता में मिलता है। फिरोज़शाह ने दिल्ली के आसपास 1200 बागीचे लगयावे थे। सलोरा के घाटों पर 800 और चित्तौड़ में ४४ उद्यान लगाए गए थे। फलों के बगीचों में काले और हरे अंगूर, बादाम और अंजीर की खेती होती थी जिससे सुल्तान को 9,80,000 टंका का वार्षिक आय होता था। कीर्त्तिलता में आम और चम्पक के बागानों का उल्लेख मिलता है। तुर्कों ने भारत में सर्वप्रथम नयी तरह के तोरणों, गुम्बदों, महरबदार वन और तहखाने निर्माण की तकनीक को स्थापत्य कला में जोड़ा था। सफ़ेद, पीले और लाल बलुआ पत्थरों का प्रयोग रंगों के लिए किया जाता था। महलों के'हराम' में हजारों रानियाँ और स्त्रियाँ रहती थीं। घोर विलासिता और वैश्यावृत्ति समाज की सच्चाई थी। सतीशचन्द्र मध्यकालीन भारत में लिखते हैं कि– 'फिरोज़शाह के वज़ीर खान–ए–जहां के हरीम में 20,000 औरतें रहती थीं' 90 'वैश्या वर्णन' का विस्तार पूर्वक चित्रण कीर्त्तिलता में हुआ है। यहाँ दो प्रकार की स्त्रियों की चर्चा की गयी है। पहली वैश्याओं का और दूसरे नगरों में आम ग्राहस्थ्य स्त्रियों

का। बहुपत्नीक प्रथा की इजजात इस्लाम में थी। भारतीय 'नगर वधू' की अवधारणा के स्थान पर तुर्कों ने बाज़ार में 'वैश्यावृत्ति' को बढ़ावा दिया। ये स्त्रियाँ गुणहीन होती थीं जो लो वश ,धन प्राप्ति के लालच से प्रेम और पति के बिना सिंदूर के प्रति अनुराग रखती थीं। रोचक तथ्य यह है की पूरे कीर्त्तिलता में बुर्के या पर्दे में घूमती औरतों का उल्लेख नही मिलता है। केवल एक स्थान पर मौलवी की निङुष्ठता का उल्लेख विद्यापति करते हैं– षुन्द्कारी हुकुमकहओ का अपनेनों जोएपराहिया।

तुर्की 'भोज्य– संस्कृति' की छाप कीर्त्तिलता में बिखरी पड़ी है। लोक में खान–पान के तौर–तरीके, मुग़लई खाने– कबाब, सालन, गो– मांस, शराब, लहसुन–प्याज का वर्णन तुर्की संस्कृति सापेक्ष है–

अब वे नन्ता सराब पिबंता
सब्बस्स सराब षराब कई ततत कबाबा दरम
दौरि चीरि जिऊ धरित समिण सालण अणे णे
जो आनिय आन कपूर सम तबहु पियाजु पियाजु पै
अरु कत धांगड़ देषीअथि जयी तें
गोरू मारि बिस्मिल कए षाइते

तुर्कों के खान–पान की चर्चा करने के क्रम में विद्यापति हिन्दू सात्विक भोज्य–संस्कृति की तुलना में तुर्की भोज्य–संस्कृति को तुच्छ और अक्ष्य माना है। डॉ सुनीति कुमार चटर्जी 'वर्ण–रत्नाकर' की भूमिका में लिखते हैं– जीम ंजउवेचीमतम वज्ञिपतजपसंजं पे चनतमसल भ्पदकन तुर्कों की धार्मिक असहिष्णुता और हिंदुओं के प्रति किए गए धार्मिक अत्याचारों का वर्णन भी इस ग्रंथ मे हुआ है। हिन्दू धर्म बनाम इस्लाम की रस्साकशी कब्से लोक में गहरे रूप में पैठ कर गयी थी इसका चित्रण विद्यापति करते हैंः

धरि आनय बा न बटुआ,
मयां चढ़ावए गाईक चुडुआ।
फोट चाट जनउ तोड़,
उमर चढ़वाय चाह घोरा।
हिन्दु बोलि दुरहि निकार,
छोटेओ तुरका की मार।।

विद्यापति लिखते हैं की जोनापुर में ब्राह्मण, कायस्थ, राजपूत, तैलंग, बंग, चोल और कलिंग देश के वीर रहते थे और स भी अपनी भाषा बोलते थे। सलतनत काल में हिंदुओं और खासकर ब्राह्मणों की स्थिति दारुण्य थी। यवनों और तुर्कों द्वारा ब्राह्मणों पर किए जाने वाले धार्मिक अत्याचार का जीवंत चित्र विद्यापति तीसरे पल्लव में उकेरते हैं–

हिन्दू तुरके मिलल वास, एकक धममे आऊका उपहास ।
कतहु बाँग कतहु वेद, कतहु मिसमिल कतहु छेद ।
कतहु ओझा कतहु षोजा, कतहु नकत कतहु रोजा।
कतहु तंबारू कतहु कूजा, कतहु नीमाज कतहु पूजा ।

आदिकालीन समाज सामंती होने के कारण धर्म द्वारा संचालित था। भारतीय समाज में धार्मिक असहिष्णुता का माहौल था। इतिहासकार डॉ सतीश चन्द्र इस दौर की धार्मिक स्थिति पर विचार करते हुए लिखते हैं– भ्पदकनेमतम दवजससवूमक जव इनपसक जमउचसमे पद वचचवेपजपवद जव जपउमे वूति, जमउचसमे वसिवदह जंदकपदह मतम बामकंदक कमेजतवलमक वउम वजिीमउमतम बवदअमतजमक पदजव उवेुनमे वत जीम चसनदकमतमक उंजमतपंस तिवउ जीमपत तनपदेमतम नेमक वित इनपसकपदह उवेुनमे. 12 वे आगे लिखते हैं –

मध्यकालीन भारत में सामंतवादी प्रवृतियों की जड़ें समाज में बहुत गहरे तक जम चुकी थीं। तुर्कों ने जब भारत में प्रवेश किया तब उन्होनें ऐसे समाज का साक्षात्कार किया जहां ब्राह्मणवादी व्यवस्था सुदृढ़ थी और देश सामाजिक संघर्ष और तनाओं से ग्रस्त था। वस्तुतः शहरीकरण की नवीन प्रक्रिया, नगर–निर्माण, बाज़ारवाद, वाणिज्य विस्तार दो भिन्न

संस्कृतियों के संक्रमण और ताकतवर सत्ता तथा उसकी संस्कृति की स्थापना का परिणाम था। 'बाज़ार' तुर्की शहरीकरण का प्रमुख घटक था। एक नए मुल्क भारत में जब तुर्क आए तब उनके सामने तीन सबसे बड़ी चुनौतियाँ थीं – सड़क,संचार के साधन और तीसरे ज्यादा–से–ज्यादा मुस्लिम आबादी को स्थापित करना। 'शहरीकरण की प्रक्रिया' और 'बाज़ार का प्रवेश' इसी तीसरी चुनौती का प्रतिफल रहा। कीर्त्तिलता के दूसरे पल्लव में बाज़ार का विषद वर्णन मिलता है –अष्टधातु से बनी तलवारों, बरछी, बर्तनों, घोड़े–हाथी, तीर–कमान, दास–दासियों, गुलामों के बाज़ारों का उल्लेख हुआ है। भारत के आर्थिक विकास में आठवीं से सोलहवीं शताब्दी का काल व्यापार और उद्योग की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है। इस दौर में व्यापार का उल्लेख कई इतिहास ग्रन्थों में हुआ है –'फबायद –उल–फवाद', अफ्रीकी यात्री इब्न–बतुता के 'रेहला' में मिलता है। इस काल में सबसे ज्यादा विदेशी यात्रियों – अलबरूनी, अब्दुल रज़्ज़ाक़, मार्को पोलो, निकोलो–दी–कोन्ती का आगमन भारत में हुआ। सातवीं से दसवीं शताब्दी का दौर भारत–अरब जगत के व्यापारिक संबंधो के लिहाज से 'स्वर्णकाल' कहा गया है।

चतुर्थ पल्लव में विद्यापति ने तदयुगीन तुग़लक वंश की सैन्य प्रणाली पर विचार किया है। तुर्क मुख्यतः सैनिक थे और उनके लिए भारत को अपनी आवश्कताओं के अनुसार गढ़ना चुनौतीपूर्ण कार्य था। शाही सेना अथवा सल्तनत सेना को 'हश्म–ए–क़ल्ब' या 'क़ल्ब–ए–सुलतानी' कहा जाता था। सन 1330 ईस्वी में तुग़लक वंश में गयासुद्दीन तुग़लक ने सैन्य सुधारों को पुनः लागू किया था। 'हुलिया–प्रथा','दाग–प्रथा','दाग–ए–अस्प','अक़ता–प्रथा' मध्यकालीन सैन्य–संचरण के ख़ास प्रथा थे। मंगोलों के 'दशमलव–प्रणाली' के अनुकरण पर सल्तनत सेना का संगठन किया गया था। सेना के अधिकारियों का क्रम इस प्रकार था ख़ान 10,000 (सवारों का सेनानायक) मलिक 1,000 अमरी 100 सिपहसलहार 10 व्यक्तिगत सैनिक। मोहम्मद तुग़लक के शासन काल में पहली बार इनके वेतन का उल्लेख मिलता है। राजा कीर्त्तिसिंह के पिता राजा गनेश्वर का युद्ध मलिक असलान के साथ हुआ था। कीर्त्तिलता में प्रयुक्त होने वाले जिन अस्त्र–शस्त्रों का उल्लेख मिलता है, वे चौदहवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास में प्रयोग होने वाले शास्त्रों से साम्य रखते हैं। तुर्की सेना मगरीब, अरादा, फालाख़ून का प्रयोग करते थे युद्ध के कारण आम जनता और लोक में पसरे हिंसा, लूटपाट, आर्थिक तंगी, बलात्कार का वर्णन विद्यापति करते हैं। कीर्त्तिलता में बताया है की तिरहुत की ओर जाते हुए यवन–सेना ने रास्ते में पड़ने वाले गाँव, बस्ती और नगरों को तहस–नहस कर दिया था। समूचे मध्यकालीन भारतीय इतिहास के पन्ने यवनों की नृशंसता, लूटपाट और हत्या के खून से रंगे हुए हैं। कीर्त्तिलता के अंत में राजा कीर्त्तिसिंह और वीरसिंह युद्ध भूमि में वीर पुरुष की तरह असलान से युद्ध करते हैं। निहत्थे असलान पर कीर्त्तिसिंह अस्त्र नहीं उठाते और असलान रण–भूमि छोड़कर भाग जाता है। कथा के अंत में वैदिक मंत्रोचार और पवित्र शंख की ध्वनि के साथ स्वयं फिरोज़शाह ने शुभ मुहूर्त में कीर्त्तिसिंह का राज्याभिषेक़ किया और इस प्रकार तिरहुत राज्य उनको वापस प्राप्त हुआ।

'कीर्त्तिलता' महाकवि विद्यापति ठाकुर विरचित ऐसा ग्रंथ है जो मध्यकालीन इतिहास और समाज की पूरी जीवंतता को यथार्थ रूप में नज़र आता है। विद्यापति कालजीवी रचनाकार थे। जो रचनाकार कालजीवी होता है उसी की रचना कालजयी होती है। निश्चित रूप से कीर्त्तिलता आदिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐसी कालजयी रचना है जिस पर जब की कोई हिन्दी या इतिहास प्रेमी अपनी रुचि और जिज्ञासा के हाथ फेरेगा उसे हज़ारों साल पुरानी तस्वीर नयी नज़र आएगी।